भारत कैसे था सोने की चिड़िया

भारत का अद्भुत वस्त्र विज्ञान

डॉ. साध्वी देवप्रिया
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्षा- दर्शन विभाग,
पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार

भारत का 17वीं और 18वीं शताब्दी तक विश्व के व्यापार में लगभग 35-40 प्रतिशत हिस्सेदारी रहती थी, पर भारत सोने की चिड़िया क्यों कहलाया जाता था? अगर हम देखें की भारत में पुराने जमाने से लेकर आज तक कोई सोने की, हीरे की बहुत बड़ी खदानें नहीं हैं। कर्नाटक में 1-2 खदानें हैं।

यह माना जाता है कि भारत का विज्ञान इतना उन्नत था, भारत के उत्पाद इतने उन्नत थे, भारत के मसाले, भारत का वस्त्र उद्योग, भारत की विज्ञान और टेक्नोलॉजी इतनी अच्छी थी कि विदेशों में लोग उसे लेते थे और बदले में सोना-चाँदी देते थे। कुछ शोधकर्ता तो यह कहते हैं सोना-चाँदी बह-बहकर भारत आता था, मतलब व्यापार के माध्यम से भारत की टेक्नोलॉजी इतनी उन्नत थी कि सोना-चाँदी बह बहकर देश में आता था।

यह सोना-चाँदी कैसे आता था इसका अंदाजा आप लगा लीजिये की दुनिया के लोग जब जंगलों में रहते थे, जब उन्होंने वस्त्र बनाना नहीं सीखा था। उस समय से भारत में वस्त्र बनाये जा रहे हैं। भारत से जो मसाले विदेश जाते थे उन्हें विदेश के अमीर लोग अपने घर के ड्राईंग रूम में दिखाने के लिए मर्तबान में रखते थे और यह अमीरी की निशानी मानी जाती थी कि मेरे पास 1-2 किलो काली मिर्च है। भारत कैसे विश्वगुरु था, यह बात इसी से आँकी जा सकती है कि जो कपड़े भारत से निर्यात किए जाते थे वह इतने उन्नत होते थे कि विदेशी बाजारों के तराजू के एक पलड़े पर कपड़ा रखा जाता था और कपड़े की कीमत कोई मीटर या किलो में नहीं होती थी बल्कि तराजू के दूसरे पलड़े पर सोना, चाँदी आदि मूल्यवान धातुएँ रखी जाती थी। हमारे कपड़े के बराबर सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात हमारे देश में आता था। इतना उन्नत विज्ञान हमारा था।

हमारे भारत में एक पूरा सिल्क रूट रहा है, जो रूट केवल सिल्क और वस्त्र उद्योग के लिए बनाया गया था। हमारे भारत में वस्त्रों का विज्ञान कितना उन्नत रहा है इसका अंदाजा आप स्वयं लगा लीजिये। दुनिया के दूसरे लोग या तो भेड़ के या तो दूसरे जंगली जानवरों के बालों से धागा बनाते थे, उनसे वस्त्र बनाते थे वह कपड़े नहीं होते थे अपितु लबादे होते थे। वे उनको शरीर पर धारण करते थे, जो बहुत गर्म और मोटे होते थे। भारत में वस्त्र विज्ञान इतना उन्नत था कि 'जब विदेशी भारत आए तो उन्होंने पहली बार रुई देखी।' रूई देखकर उन्होंने कहा कि 'भारत के अंदर तो भेड़ का पौधा होता है।' उनको यह नहीं पता था की रुई जैसी कोई चीज वनस्पति, पेड़ के ऊपर लगती है। भारत का वस्त्र विज्ञान कितना उन्नत था इसके मैं एक दो उदाहरण आपके सामने रखूँगा। नवीं शताब्दी में भारतीय वस्त्र उद्योग के बारे में यह कहा जाता था की कपड़े का पूरा थान एक अंगूठी के अंदर से निकल जाता है।

17वीं शताब्दी में फ्रांसीसी यात्री वेर्नियर भारत आया तो यहाँ के कपड़े को देख कर कहता है कि 'कपड़े की बुनाई इतनी महीन की गई है कि किसी ने पहन लिया तो यह नहीं लगता की कुछ पहना हुआ है, इतना बारीक कपड़ा यहाँ पर बनता था।

एक बार पर्शियन राजदूत भारत आया और अपने सुल्तान के लिए एक उपहार यहाँ

से लेकर गया। उसने भरे दरबार में उसने सुल्तान को एक नारियल का खोल उपहार दिया। उस नारियल के खोल को दरबारियों ने आश्चर्य से देखा। जब सुल्तान ने खोला तो उस नारियल के खोल के अंदर 30 गज का मलमल का थान निकला, यह टेक्नोलॉजी केवल हमारे भारत देश के अंदर थी।

हमारे यहाँ जब अंग्रेज आये तब उन्होंने 18वीं शताब्दी में भारत से बना हुआ एक कपड़ा जाँच के लिए इंग्लैंड भेजा और उस कपड़े को जब count किया गया कि यह कितना बारीक है, तो यह पाया कि उस कपड़े में जो धागा लगा हुआ वह 2425 count का है। आज भी हम आधुनिक मशीनों से जब हम धागा बनाते हैं तो 500 से 600 count का ही धागा बना पाते हैं। जहाँगीर के समय की बात करें तो जहाँगीर के काल में लगभग 15 मीटर लम्बे, लगभग 1 मीटर चौड़े मलमल के कपड़े का वजन केवल 100 ग्रेन होता था (1 ग्राम में 15.5 ग्रेन होते हैं)। इसका मतलब क्या है कि एक ग्रेन एक ग्राम का 15वां हिस्सा है, तो 6 ग्राम में 15 गज लम्बा तथा एक गज चौड़ा मलमल का कपड़ा रहता था, इतनी उन्नत तकनीक भारत में थी। अभी भारत का वह वस्त्र विज्ञान दोबारा से विलुप्त हो गया है।

पतंजलि ने एक नई पहल वस्त्र विज्ञान में की है जिसके तहत पतंजलि ने बांस के वस्त्र बनाए हैं।

पूरी दुनिया में बांस पाया जाता है। बांस की लगभग 1500 प्रजातियाँ होती हैं, कुछ प्रजातियाँ ऐसी हैं जो बहुत धीरे-धीरे बढ़ती हैं तथा कुछ एक दिन में ही 1 मीटर बढ़ जाती हैं। बांस को उगाने के लिए किसी प्रकार की अलग से खेती करने की, कीटनाशक व फर्टिलाइजर डालने की, अलग से पानी देने की जरुरत नहीं पड़ती। कम देखभाल में बांस खूब उगता है। पतंजलि ने इस बांस के वस्त्र बनाये हैं। विदेशों में बांस के वस्त्रों का प्रचलन पहले से है, यूरोप में तो इसे फैशन माना जाता है और जो बड़े-बड़े एथलीट हैं वे बांस से बनी जुराबें पहनते हैं। बांस से वस्त्र कैसे बनाये जाते हैं यह भी एक रोचक विषय है। बांस के गूदे (पल्प) से धागा बनाया जाता है और उसी धागे की बुनाई करके कपड़ा बनाया जाता है। बांस के वस्त्र चमत्कारिक होते हैं। पतंजलि ने बांस का प्रयोग कर वस्त्र बनाए हैं। ये वस्त्र अत्यधिक गर्मी में भी पसीना सोखने का काम करते हैं। बांस के दो महत्वपूर्ण गुण हैं- एक एंटी-फंगल तथा दूसरा एंटी-बैक्टीरियल। अतः इसमें फंगस अपने आप नहीं पनपती और पनपती है तो मर जाती है। जीवाणु और विषाणु एक कोशिका के बने होते हैं, यह कहीं भी आसानी से पैदा हो जाते हैं। कहीं भी नमी, सीलन या पसीने का वातावरण मिलता है तो ये अपने शरीर तथा शरीर के बाहर वातावरण के सम्पर्क में आकर पैदा होते रहते हैं। इस वस्त्र की और खास बात है। कश्मीर के पश्मीना की तरह यह बहुत कोमल होता है। कश्मीर का यह पश्मीना पशुओं से प्राप्त किया जाता है, लेकिन यह पौधों से प्राप्त किया जाता है।

हमारे वस्त्रों के तीन मुख्य स्रोत हैं, एक जानवरों के बाल से, इसमें रेशम का कीड़ा तथा अन्य जानवर जैसे- भेड़, बकरी या खरगोश आदि के बाल से धागा बनाया जाता है। दूसरा स्रोत है वनस्पति का, जैसे कपास, बांस या दूसरी चीजों से कपड़ा बनाना और तीसरा स्रोत है औद्योगिक स्रोत, जिसमें प्लास्टिक, नायलॉन आदि से कपड़ा बनाया जाता है। पशुओं के माध्यम से बना कपड़ा बहुत गर्म होता है किन्तु उसकी बुनाई बहुत बारीक नहीं हो सकती तथा उसके अन्दर जीवाणुरोधक गुण भी नहीं होते। बल्कि इसके विपरीत उनमें जीवाणु आसानी से पैदा हो जाते हैं। सूती कपड़ा सबसे अच्छा माना जाता है किन्तु कपास के अंदर एक बड़ा षड्यंत्र हो रहा है। कपास में बी.टी. कॉटन आ चुकी है। बी.टी. कॉटन क्या है? कपास के बीज में आनुवंशिक रूप से संशोधित करके बिच्छू का जहर डाल दिया गया जिससे कपास के ऊपर कीड़े-मकोड़े ना लगें। जब किसान इस बीज से उत्पादित फसल से कपास निकालते हैं तो उनको खुजली होती है। उस बिनौले को जब पशुओं को खिलाते हैं तो वह बीमार हो जाते हैं, उनमें कैंसर जैसे रोग पैदा होते हैं। कृषि वैज्ञानिक भाई देवेन्द्र शर्मा ने बताया की बी.टी. कॉटन बीज जब चूहों को खिलाया गया तो कुछ ही महीनों में उनमें कैंसर के ट्यूमर निकल आए। बी.टी. कॉटन का रेशा बनता है तो उसके अन्दर भी जहर आता है। वस्त्र 24 घण्टे हमारे शरीर व आसपास के वातावरण के बीच एक परत का काम करते हैं, यदि इसमें किसी प्रकार का जहर है तो वह हमारी त्वचा के स्पर्श में आता है, और स्पर्श की क्या ताकत है आपको पता होगा कि जब किसी को पीलिया होता है तो कुछ औषधियाँ ऐसी हैं जिनकी जड़ी-बूटी की माला बना कर गले में डाल देने मात्र से ही पीलिया ठीक हो जाता है। इसका अर्थ है कि स्पर्श से गुण आते हैं। तांबे के जग में पानी डालते हैं तो स्पर्श से ही तांबे के गुण पानी में आ जाते हैं। वस्त्रों का स्पर्श भी हमारे शरीर से होता है तो उनके गुणों-अवगुणों का प्रभाव हमारी त्वचा पर होता है। अगर वस्त्र खराब है, नायलॉन

इत्यादि का है तो उसका नुकसान हमें उठाना पड़ता है। लेकिन बांस के वस्त्र लचीले तथा पश्मीने जैसे मुलायम व कोमल हैं, दूसरा यह biodegradable है, साथ ही इसमें thermocontrol के गुण हैं। ये वस्त्र गर्मी में पहनेंगे तो यह ठण्डे रहेंगे, सर्दी में पहनेंगे तो गर्म रहेंगे। बांस का रेशा नमी सोखता है, यदि आपको पसीना आयेगा तो पसीने की नमी को यह सोख लेगा। सूती कपड़े के मुकाबले इसमें कई गुना नमी सोखने का गुण है। बांस से बने वस्त्र धोने में बहुत आसान है। अभी बांस के कपड़े यूरोप में फैशन बना हुआ है, बड़े-बड़े लोग जो महंगे-महंगे कपड़े पहनने के शौकीन हैं, वे भी बांस के कपड़े पहनने लगे हैं, जितने बड़े athlete हैं, वे बांस से बनी जुराब ही पहनते हैं, क्योंकि पैर एक ऐसी जगह है जहाँ पसीना ज्यादा आता है जिससे दुर्गन्ध भी ज्यादा आती है। जो athlete दौड़ते हैं उनको पसीना भी ज्यादा आता है। थोड़ा सा भी पसीना और नमी होती है तो फिसलने से उनकी जो grip नहीं बन पाती, इसलिए वे बांस की बनी जुराबें प्रयोग करते हैं। Nylon और bamboo की बात करें तो bamboo biodegradable है। वातावरण के ऊपर इसका कोई हानिकारक प्रभाव नहीं हैं। बांस का एक और फायदा है कि इसे कहीं भी लगाया जा सकता है। इसके लिये किसी खेत की आवश्यकता नहीं है। पहाड़ के ऊपर भी लगा सकते हैं। मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश में यह अपने आप उगता है। इसके अंदर एक गुण यह भी है कि यह सामान्य पौधे की तुलना में वातावरण से 5 गुना ज्यादा carbon-di-oxide लेता है तथा 30 प्रतिशत ज्यादा oxygen देता है, वातावरण की रक्षा के लिये बांस को प्रोत्साहित किया जाय तो वह हमारे लिये अच्छा है। वहीं दूसरी तरफ Nylon एक petroleum product है, nylon को जब बनाया जाता है तो इसमें बहुत सी ऊर्जा लगती है, बहुत सारा पानी लगता है, वातावरण के लिये बिल्कुल अनुपयोगी है। nylon बनाना तो बहुत आसान है लेकिन इसको degrade होने में सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं।

बांस के कपड़े को यदि धूप में, मिट्टी में छोड़ दिया जाए तो यह 5-7 साल में जमीन के अन्दर मिल जायेगा, मिट्टी हो जायेगा, लेकिन nylon का कपड़ा एक बार बन गया तो आप जमीन में दबा दीजिये, पानी में फेंक दीजिये, कहीं पहाड़ पर डाल दीजिये तो वह 100-150 साल तक ऐसा ही रहता है, क्योंकि nylon एक तरह का प्लास्टिक है। इसका प्रयोग वैसे भी कम ही करना चाहिये। सूती कपड़े की तुलना में भी बांस का कपड़ा बहुत अच्छा है।

पतंजलि का मानना है कि लोगों को अच्छी चीज मिलनी चाहिये, अच्छी चीजों के बारे में जानकारी होनी चाहिये। आप एक बार पतंजलि के वस्त्र लेकर अनुभव कर सकते हैं। इनको प्रयोग कीजिये, अनुभव कीजिए, आपको कैसा महसूस हो रहा है।

पतंजलि ने यह LiveFit के नाम से पूरा ब्रांड बनाया हुआ है, यह ब्रांड पतंजलि परिधान के अंतर्गत है। ये वस्त्र सभी जगह उपलब्ध नहीं हैं, केवल 5-7 जगह हमारे स्टोर्स खुले हैं। यदि इन्हें प्राप्त करने में किसी भी प्रकार की कोई समस्या आती है तो आप हमारी website patanjaliayurved.net से online क्रय कर सकते हैं। दिल्ली के पीतमपुरा में हमारा एक स्टोर है वहाँ से या पतंजलि योगपीठ-I, हरिद्वार स्थित मेगा स्टोर से प्राप्त कर सकते हैं। हम चाहेंगे कि हमारे भारत के वस्त्र उद्योग की प्राचीन प्रणाली जिसका अनुसरण करते हुए पतंजलि ने नई पहल की है, इसका प्रयोग आप जरूर करके देखें। इसको एक बार महसूस करें।

भारत माता की जय, वन्दे मातरम्।

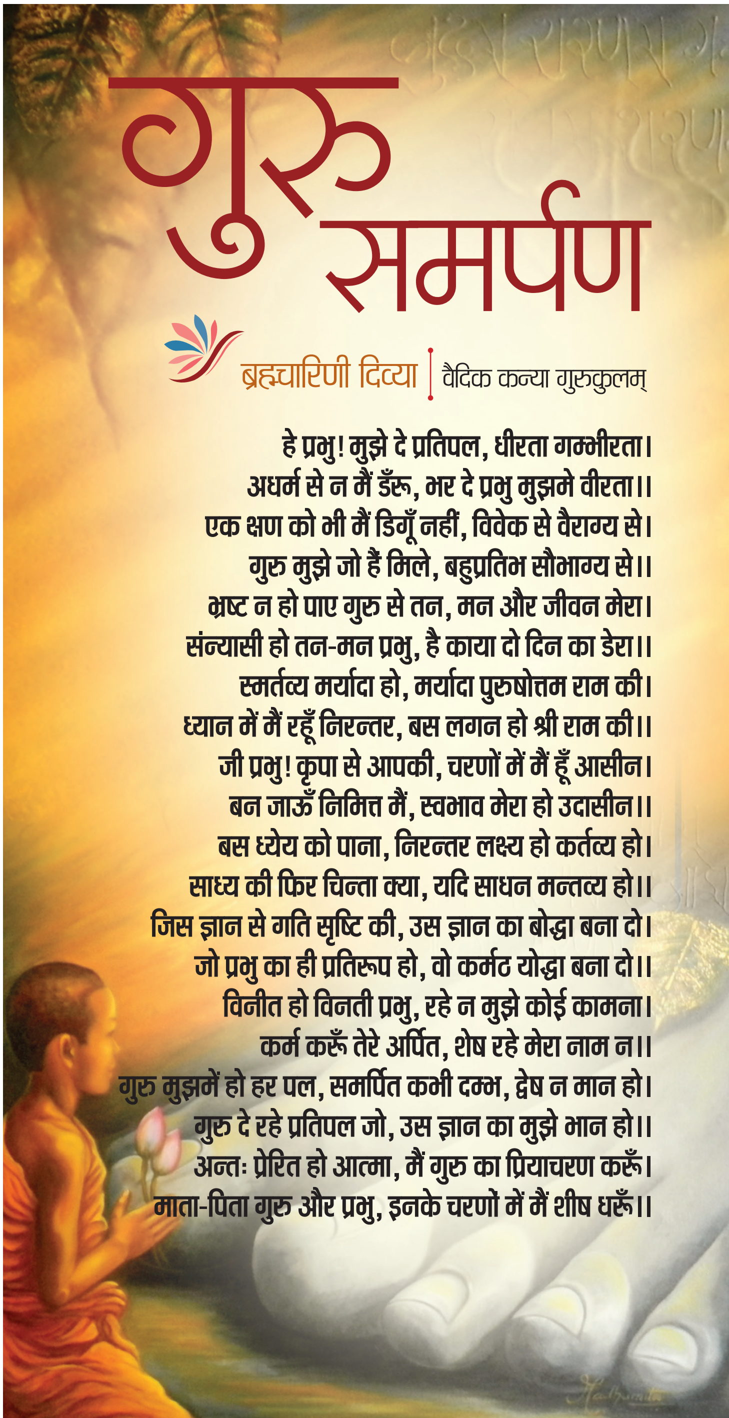

गुरु समर्पण

ब्रह्मचारिणी दिव्या | वैदिक कन्या गुरुकुलम्

हे प्रभु! मुझे दे प्रतिपल, धीरता गम्भीरता।
अधर्म से न मैं डरूँ, भर दे प्रभु मुझमे वीरता।।
एक क्षण को भी मैं डिगूँ नहीं, विवेक से वैराग्य से।
गुरु मुझे जो हैं मिले, बहुप्रतिभ सौभाग्य से।।
भ्रष्ट न हो पाए गुरु से तन, मन और जीवन मेरा।
संन्यासी हो तन-मन प्रभु, है काया दो दिन का डेरा।।
स्मर्तव्य मर्यादा हो, मर्यादा पुरुषोत्तम राम की।
ध्यान में मैं रहूँ निरन्तर, बस लगन हो श्री राम की।।
जी प्रभु! कृपा से आपकी, चरणों में मैं हूँ आसीन।
बन जाऊँ निमित्त मैं, स्वभाव मेरा हो उदासीन।।
बस ध्येय को पाना, निरन्तर लक्ष्य हो कर्तव्य हो।
साध्य की फिर चिन्ता क्या, यदि साधन मन्तव्य हो।।
जिस ज्ञान से गति सृष्टि की, उस ज्ञान का बोद्धा बना दो।
जो प्रभु का ही प्रतिरूप हो, वो कर्मठ योद्धा बना दो।।
विनीत हो विनती प्रभु, रहे न मुझे कोई कामना।
कर्म करूँ तेरे अर्पित, शेष रहे मेरा नाम न।।
गुरु मुझमें हो हर पल, समर्पित कभी दम्भ, द्वेष न मान हो।
गुरु दे रहे प्रतिपल जो, उस ज्ञान का मुझे भान हो।।
अन्तः प्रेरित हो आत्मा, मैं गुरु का प्रियाचरण करूँ।
माता-पिता गुरु और प्रभु, इनके चरणों में मैं शीष धरूँ।।

योग की शक्ति से राष्ट्र-निर्माण

आचार्या साध्वी देवप्रिया
संकायाध्यक्षा एवं कुलानुशासिका- पतंजलि विश्वविद्यालय

आज हम देख रहे हैं कि पिछले लगभग 40-50 वर्षों के दौरान भोग का जो लोगों ने प्रचार-प्रसार किया है और उसका हमारी युवा पीढ़ी पर, हमारे बचपन पर जो दुष्प्रभाव दिखाई दे रहे हैं, यह सब भोग की महिमा व उसके प्रचार-प्रसार का ही परिणाम है। आज हमें पूरे विश्व में योग का प्रचार-प्रसार करने की आवश्यकता है। आज योग को घर-घर व जन-जन तक पहुँचाने की हमारी जिम्मेदारी है। जो व्यक्ति योग की महिमा को जानते हैं, जो योग की जड़ों से जुड़े हैं, उन सबकी जिम्मेदारी बनती है कि वह योग को सोशियल मीडिया पर प्रचारित-प्रसारित करें। योग से सम्बद्ध विद्वतजन, प्रबुद्धजनों के विचार तथा योग से संबंधित उनके ज्ञान का आदान-प्रदान हम सोशियल मीडिया पर करें, इसकी आज बहुत आवश्यकता है क्योंकि सोशियल मीडिया का क्षेत्र मीडिया के बराबर या यूँ कहें कि उससे भी विराट् होता जा रहा है। हम सब जो योग की महिमा को बहुत गौरव देते हैं और अपने आप को योगियों की संतान मानते हैं, उन सभी भाई-बहनों को योग का प्रचार-प्रसार सोशियल मीडिया व मीडिया में तथा यथासंभव सभी जगह करना चाहिए और अपने जीवन में भी योग को आत्मसात करना चाहिए। योग के लिए सबसे पहले यदि कोई प्रामाणिक ऋषि माने जाते हैं, तो वह हैं 'महर्षि पतंजलि'। उन्हीं के नाम पर परम पूज्य स्वामी जी महाराज ने अपने संस्थान का नाम पतंजलि योगपीठ तथा अपने विश्वविद्यालय का नाम 'पतंजलि विश्वविद्यालय' रखा है। कुछ लोग कहते हैं कि योग तो अतीन्द्रिय वस्तु है। उसका जीवन से, व्यवहार से, आचरण से कुछ लेना-देना नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि केवल प्राणायाम योग नहीं है, केवल ध्यान और केवल सरल आसन करना भी योग नहीं है। वे नहीं-नहीं करके इसको क्रिटिसाइज़ करने से शुरुआत करते हैं, लेकिन जब हम महर्षि पतंजलि द्वारा लिखे पहले ही सूत्र और उस पर लिखे व्यास भाष्य को देखते हैं, जब हम गीता पढ़ते हैं तो हमें पता चलता है कि हमारे जीवन का प्रतिपल योग ही है। बस हम उस योग से युक्त हो जाएँ। ये तो सारी सृष्टि ही योगमय है। गीता में भगवान् श्री कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि-

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।। (गीता, 3.10)

उन्होंने कहा है कि यह सारी सृष्टि ही मैंने यज्ञमय, योगमय रची है और आप भी इस यज्ञ व योग से जुड़कर इसे आगे बढ़ाएँ।

महर्षि पतंजलि द्वारा रचित प्रथम सूत्र **अथ योगानुशासनम्** (योगदर्शन 1.1) की व्याख्या करते हुए परम पूज्य स्वामी जी महाराज कहते हैं कि योगानुशासन का अर्थ है- अनुशासन ही योग है। अतः जीवन में हमारे एक-एक क्रिया-प्रतिक्रिया का अनुशासन, हमारा बोलना, बैठना, चलना, मन में विचार करना, हृदय के भावों को अभिव्यक्त करना, फिर उनको क्रिया में लाना, छोटी से छोटी हमारी क्रिया योगयुक्त हो सकती है और होनी चाहिए, ऐसा हमें प्रयास करना चाहिए। क्योंकि योग यदि कोई अतीन्द्रिय तत्त्व भी है और हमने उसे केवल अतीन्द्रिय मान लिया है तो उस योग का तो हमारे इस जीवन में कोई प्रयोग हो ही नहीं पाएगा। फिर हम योग के आधे अर्थ से वंचित हो जाएँगे। महर्षि व्यास ने योगदर्शन के व्यास भाष्य के प्रथम सूत्र में बहुत स्पष्ट किया है- **योगः समाधिः समाधिः समाधानम्**। कितनी स्पष्ट व्याख्या की है उन्होंने। अतः योग क्या है? समाधि है। उन्होंने यह भी बताया कि समाधि चित्त की सभी भूमियों का धर्म है। चित्त की किसी भी भूमि में हमारी समाधि लग सकती है और समाधि का अर्थ उन्होंने समाधान बताया है। अर्थात् चित्त की जो पाँच भूमियाँ बताई हैं, उनमें अत्यंत तल्लीनता अर्थात् केवल **तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिवसमाधिः।** (योगदर्शन, 3.3) क्रोध में भी व्यक्ति अर्थमात्रनिर्भासं हो जाता है यानि उसका व्यक्तित्व क्रोध ही क्रोध बन जाता है और स्वरूपशून्यमिव अर्थात् उसका अपना स्वरूप शून्य जैसा हो जाता है। लोकभाषा में इसे कहते हैं कि उन्होंने तो आपा खो दिया, अर्थात् अपने निज स्वरूप को भुला दिया। यह भी एक समाधि है लेकिन इसे योग की श्रेणी में नहीं माना जाता क्योंकि यह चित्त की क्षिप्त या विक्षिप्त अवस्था है। चित्त की जो तीन भूमियाँ या अवस्थाएँ (Stage) हैं उनको योग की श्रेणी में नहीं लिया है। योग की श्रेणी में लिया है- एकाग्रचित्त। व्यक्ति जो कार्य एकाग्र होकर करता है, जहाँ पर बस केवल उसका कार्य ही अभिभाषित हो, जब वह योग करता है, प्राणायाम करता है, ध्यान करता है तो बस वहीं रहे तो यह कार्य योग की श्रेणी में माना जाता है। मान लीजिए वह भोजन कर रहा है तो वह केवल भोजन ही करे। उसका पूरा अस्तित्व भोजन पर ही केन्द्रित (Focus) हो जाए, तो वह भोजन मात्र भोजन नहीं रह जाता, फिर वह अमृत बन जाता है, विशेष वस्तु बन जाता है, प्रसाद बन जाता है। इसी प्रकार चाहे वह व्यायाम कर रहा है, कोई शास्त्र स्मरण कर रहा है, अपने कार्यालय का कार्य कर रहा है, अपने बच्चों के साथ खेल रहा है, कुछ भी कार्य कर रहा है, यदि वह उसे योगयुक्त होकर जीता है, तो वह कार्य उसके जीवन का समाधान बन जाएगा। कुछ लोग तो अपने जीवन का समाधान भी नहीं कर पाते जबकि कुछ महापुरुष होते हैं जो हजारों-लाखों लोगों के जीवन का समाधान कर देते हैं, पर हम यदि इतना नहीं कर पाते तो मनुष्य होने के नाते ये तो हमारी जिम्मेदारी बनती है कि हम अपनी समस्याओं का समाधान तो जरूर कर लें। यदि हम अपनी समस्याओं का समाधान नहीं भी कर पाते तो हम स्वयं दूसरे लोगों के लिए समस्या बन जाते हैं। कम से कम हम समस्या न बनें और अपने लिए समाधान बनें। हो सके तो अपने आसपास के लोगों को उबारकर उनको प्रेरणा देकर आगे बढ़ाने में उनके जीवन के लिए भी एक समाधान बनें। महर्षि पतंजलि ने योग की शुरुआत एक विचार से की है- **अथ योगानुशासनम्** (योगदर्शन 1.1), **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।** (योगदर्शन 1.2) यहाँ भी भाष्यकार ने पहली ही पंक्ति में कह दिया है कि **चित्त वृत्ति निरोधः।** इसका अर्थ यह नहीं कि हम सभी विचारों को रोक दें, सुषुप्ति जैसी अवस्था। उसके विषय में निर्देश नहीं किया गया। अगर सारी वृत्तियों को रोकने का निर्देश होता तो महर्षि पतंजलि ऐसा सूत्र बनाते कि- **योगश्सर्वचित्तवृत्तिनिरोधः।** वहाँ पर सर्व शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, इसका अभिप्राय है कि हमें क्लिष्ट वृत्तियों का निरोध करना है। क्लिष्ट मतलब जो हमें कष्ट देती हैं। तो हमारे जीवन के प्रत्येक व्यवहार की, चाहे वो हमारी शारीरिक क्रिया, मानसिक क्रिया या भावनात्मक क्रिया है, सभी की शुरुआत या बीज विचार ही होता है। इसलिए महर्षि पतंजलि ने अपने योग दर्शन की शुरुआत विचार से की है। जैसा व्यक्ति का विचार होता है, वैसा उसका संसार होता है, वैसा ही उसका व्यवहार होता है। सबसे पहले हमें व्रत लेने की, विचार करने की, संकल्प लेने की आवश्यकता है। अलग-अलग रूप में उसे कहा जा सकता है कि हम व्रत लें, हम योग का संकल्प लें, हम योग के विचार को उठाएँ, कुछ भी करें पर शुरुआत वहाँ से होती है। उसके बाद वही विचार, वहीं संकल्प यदि हम उपनिषद् की भाषा में व्रत की बात करें, तो-

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।। (यजुर्वेद 19.30)

सबसे पहले व्रत लिया जाता है, संकल्प किया जाता है कि अब मुझे ऐसा नहीं, ऐसा जीवन जीना है। अब हमें समाज को ऐसा नहीं, ऐसा बनाना है। हमें अपने राष्ट्र को ऐसा नहीं, ऐसा बनाना

है। अब हमें अपनी शिक्षा नीति में बच्चों को ये नहीं, ये सिखाना है। ऐसा व्रत या संकल्प लिया जाता है। यदि योग दिवस की बात करें तो योग केवल एक दिन करने की परिपाटी नहीं है। योग दिवस तो हमें 365 दिन मनाने की आवश्यकता है और उसमें भी 24 घण्टे। यदि कोई कहे कि 24 घण्टे कैसे? क्या रात के समय सोना भी नहीं है? सोना तो है परन्तु हमारी नींद भी योगयुक्त होनी चाहिए जिसे योगनिद्रा कहते हैं। तभी हमारा दिन योगयुक्त हो सकता है। यदि हमारी नींद योगयुक्त नहीं है तो हमारे कर्म भी योगयुक्त नहीं हो पाएँगे। एक तरह से 24 घण्टे हम योग में स्थित होकर कर्म करें। गीता में श्रीकृष्ण ने भी यही उपदेश दिया है-

योगस्थ कुरु कर्माणि। (गीता)

अर्थात् योग में स्थित होकर कर्म करो। इसका अर्थ है कि योग को केन्द्र में रखकर भी कर्म किए जा सकते हैं। गीता में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से जो प्रश्न पूछे उनसे भी पता चलता है- अर्जुन पूछते हैं-

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा, समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।। (गीता, 2.54)

अर्जुन श्री कृष्ण से पूछ रहे हैं कि हे कृष्ण, मुझे यह बतलाओ कि समाधिस्थ या स्थितप्रज्ञ किसे कहते हैं? उसका उठना, बैठना,

> भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि हे अर्जुन, जब कोई मनुष्य अपनी समस्त मनोगत कामनाओं या इच्छाओं, वासनाओं को त्याग देता है और अपने ही द्वारा अपने में संतुष्ट रहता है तब उसे स्थितप्रज्ञ या समाधिस्थ कहा जाता है।

बोलना, चलना आदि (आचरण) किस प्रकार का होता है? श्रीकृष्ण कहते हैं-

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते।। (गीता, 2.55)

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि हे अर्जुन, जब कोई मनुष्य अपनी समस्त मनोगत कामनाओं या इच्छाओं, वासनाओं को त्याग देता है और अपने ही द्वारा अपने में संतुष्ट रहता है तब उसे स्थितप्रज्ञ या समाधिस्थ कहा जाता है।

अर्थात् उठना, बैठना, चलना, फिरना, बोलना आदि सब हम समाधिस्थ होकर स्थितप्रज्ञ होकर कर सकते हैं। शुरुआत पहले संकल्प से होती है, विचार से होती है। इसलिए महर्षि पतंजलि ने अपने शास्त्र की, अपने पवित्र ग्रन्थ की शुरुआत वहाँ से ही की है। हम अपने जीवन में भी देखते हैं, हम संकल्प लेते हैं कि हमें B.A. करना है, उसके बाद B-Ed. करना है, M.A. करना है, P-hd. करना है, प्रोफेसर बनना है या किसी को Law करना है, किसी को डॉक्टरेट करना है, किसी को इंजीनियर बनना है तो हम पहले संकल्प लेते हैं। हमें एक मकान बनाना है तो पहले वो मकान हमारे मस्तिष्क में बनता है, उसके बाद वो Physically बाहर बनता है। कोई माता, गृहणी पहले संकल्प करती हैं कि हमें यह भोजन बनाना है, पहले वो भोजन उसके दिमाग में बनता है, फिर रसोई में। हम सर्वत्र सर्वदा योगयुक्त रहने का संकल्प करें-

संकल्प मयो अयं पुरुषः। (न्याय दर्शन)
सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।। (गीता, 17.3)

जैसी हमारी श्रद्धा होती है, जैसा हमारा संकल्प होता है, वैसा ही हमारा जीवन बन जाता है और फिर वैसी ही हमें संसार से भी प्रतिक्रिया मिलने लगती है।

-क्रमशः

गतांक से क्रमशः

योग की शक्ति से राष्ट्र-निर्माण

आचार्या साध्वी देवप्रिया
संकायाध्यक्षा एवं कुलानुशासिका
पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार

संतोष से सभी प्रकार की कामनायें छूट जाती हैं। हमें भगवान् का शुक्रिया करना चाहिए और कहना चाहिए कि प्रभु से जो मिला है, उसका बहुत-बहुत आभार। फिर हमें किसी अन्य चीजों को प्राप्त करने की बेचैनी नहीं होती है...

... हमारे शेष जीवन में यह सब प्राप्त किया जा सकता है। यह हमारा कर्त्तव्य भी है मगर इस प्राप्ति की कामना में हमें वर्तमान के सुख, चैन को बर्बाद नहीं करना चाहिए।

आज अच्छे लोगों को अच्छे लोगों की कमी नहीं है, उन्हें अच्छे लोग मिल ही जाएँगे। अगर किसी ने यह सोच लिया कि पता नहीं मुझे अच्छे लोग मिलेंगे या नहीं। तो निश्चित ही उसे अच्छे लोग न मिलकर नकारात्मक प्रवृत्ति के लोग मिल जाएँगे। इसलिए ऐसा सोचने की आवश्यकता नहीं है कि हमारे सोचने से क्या सारा संसार बदल जाएगा? विचार करने से सारा संसार भी बदलेगा। इस प्रकृति का कुछ ऐसा विधान है कि हम जो कुछ भी सोचते हैं, यह तथास्तु कह देती है। हमारा मन कल्पवृक्ष जैसा है। हम हमारे मन में जैसा संकल्प लेते हैं, जैसा विचार करते हैं, वैसी-वैसी प्रतिक्रिया (Response) हमें अपने घर-परिवार में, अपने रिश्तेदारों से, अपने सगे-संबंधियों से मिल जाती है। एक व्यक्ति कहता है कि मैं अच्छा कर रहा हूँ और निश्चित रूप से मेरे जीवन में अच्छा ही होगा तो उसके साथ अच्छा ही होता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति चाहता है कि मेरे घर-परिवार में सुख-शांति हो, सब योगीजन रहें, कोई भी भोगी न हो।, वह यह चाहता तो अवश्य है, मगर उसे यह भी पता है कि उसके परिवार वाले लोग सुधरने वाले नहीं हैं। इस दूसरे विचार ने उसके पहले विचार को नष्ट कर दिया। स्वयं अपने पहले अच्छे संकल्प को दूसरे बुरे संकल्प से काट दिया। हमें इन सब चीजों का पता नहीं चलता। हम दिन भर में अपने जीवन में एक सकारात्मक विचार उठाते हैं और फिर उसे एक नकारात्मक विचार से काट देते हैं। ऐसे ही हम एक विक्षिप्त अवस्था में रहते हैं। यहाँ महर्षि पतंजलि हमें बताते हैं कि आप योगी बन सकते हैं। दैनिक व्यवहार में आप उस योग को उतार सकते हैं। बस आपको अपने चित्त को एकाग्र रखना है, सकारात्मक सोचना है, नकारात्मकता का भाव मन में भी नहीं लाना है। उदाहरण के तौर पर- यदि कोई माता अपनी रसोई में खाना बना रही है तो उसे यह सोचना चाहिए कि मैं खाना नहीं, एक प्रसाद तैयार कर रही हूँ, औषधियों को बना रही हूँ और जो व्यक्ति इस भोजन का, इस प्रसाद का या इस औषधि का सेवन करेगा, उसकी शारीरिक व मानसिक स्थिति वही होगी, जैसी मैं चाहती हूँ। मैं चाहती हूँ कि घर में कोई रोगी न हो, तो कोई रोगी नहीं रहेगा। पुराने जमाने में हमारी दादी-नानी के चित्त की स्थिति योग दर्शन जैसी किताबों के अध्ययन के बगैर ही इसी प्रकार की होती थी। उनके चित्त की स्थिति होती थी- **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।** (योगदर्शन, 1.1) चित्त की वृत्ति का निरोध अर्थात् क्लिष्ट वृत्तियों का निरोध। पहले के लोग संयुक्त परिवार में रहते थे तथा कुटुंब के सभी बच्चों को भोजन बनाने वाली माता अपने बच्चों के समान मानती थी। अपनी देवरानी, जेठानी, ननंद के बच्चे सब अपने ही मानती थी। भले ही उन्होंने गीता को नहीं पढ़ा, योग सूत्रों को नहीं पढ़ा, लेकिन वे उसी समता में जीती थी।

आज समस्या यह है कि हम योगयुक्त जीवन कैसे जीएँ? इस विषय में हम जानते तो सब कुछ हैं लेकिन जीएँ कैसे? उस समता में, उस चित्त वृत्ति के निरोध में रहें कैसे? आज सब बोलते हैं नकारात्मक (Negative) नहीं सकारात्मक सोच (Positive Thinking), लेकिन सकारात्मक सोच करें कैसे? नकारात्मक विचार व्यक्ति के मन में आते ही रहते हैं। यहाँ पर उसका उपाय बताया है- **अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।** (योगदर्शन, 1.12) अर्थात् इसका कोई विकल्प नहीं है, केवल और केवल अभ्यास करना पड़ेगा और वैराग्य का अर्थ है कि संसार की चीजों में आसक्ति नहीं रखनी। गीता व दूसरे धर्मशास्त्रों में तीन बातें कहीं गई हैं कि योग से नीचे जो तीन स्थितियाँ आती हैं, वे हैं- काम, क्रोध और लोभ। आचार्य शंकराचार्य तथा गीताकार ने भी इन शब्दों का प्रयोग किया है और हम लोक व्यवहार में भी यही सुनते आए हैं। इनमें क्रोध, काम और लोभ के बीच में आता है। हमारे जीवन में जब कभी प्रतिकूल परिस्थिति आती है तो हमें क्रोध आता है। हम किसी महात्मा, गुरु, संत के पास जाते हैं या गीता का पाठ करते हैं या योग दर्शन पढ़ते हैं और कहते हैं कि मुझे इस गुस्से से पीछा छुड़ाना है। जो इस गुस्से से पीछा छुड़ाना चाहता है वह सचेत मन (Concious Mind) हैं और गुस्से के संस्कार अवचेतन मन (Sub-concious Mind) में भरे हुए हैं। तो हम कितनी भी गीता पढ़ें, जब वैसी परिस्थिति आएगी तो अवचेतन मन से वे संस्कार निकलेंगे ओर उसे क्रोध आ जाएगा। यदि हम किसी महापुरुष के पास जाते हैं कि आप हमें आशीर्वाद दे दीजिए कि हमारा गुस्सा दूर हो जाए, तो वह बेकार है। गुस्सा कोई ऐसी चीज नहीं है कि कोई महात्मा इसे समाप्त कर दे। इसका उपाय मात्र एक है- वैरागय और अभ्यास। अभ्यास का अर्थ है- **तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः** (योगदर्शन, 1.13)।

कभी न कभी तो हमारी समता भी प्रसन्नता की स्थिति बनती है, 24 घण्टे में कुछ क्षण तो ऐसे आते ही हैं। बस उन क्षणों को हमें पकड़कर रखना है और कुछ नहीं तो सुषुप्ति में तो वह अवस्था सभी की आती ही है। कितना भी कष्ट क्यों न हो किन्तु (रात्रि में जब हम गहरी निद्रा में सोते हैं तो उस समय, न तो हमारे पास धन होता है, न बल होता है, न कोई पद होता है, न प्रतिष्ठा होती है, फिर भी हम सुखी होते हैं। इससे पता चलता है कि सुख बाहर नहीं हमारे अंदर ही है। हम उन पलों को पकड़ने की कोशिश करें।)

पूर्व में कहा था कि काम और लोभ के बीच क्रोध है। काम का अर्थ है कामना। कामना का अर्थ है जो हमें आज तक प्राप्त नहीं हुआ, उसको प्राप्त करने की इच्छा। प्राप्ति तो समाप्ति है। कामना है अप्राप्त को प्राप्त करने की इच्छा। ईश्वर ने हमें जो दिया, हम उससे ज्यादा पाना चाहते हैं और जब वह हमें नहीं मिलता तो हमें क्रोध आता है। दूसरी ओर लोभ है। लोभ का अर्थ है जो हमें प्राप्त हो गया, हम उसे पकड़कर रखना चाहते हैं। हम वस्तुओं पर, व्यक्तियों पर, अपने संबंधियों पर अधिकार की भावना (Possiveness) रखते हैं। उन्हें पकड़कर रखने का भाव रखते हैं। कोई माँ अपने बच्चों

को स्वतंत्रता नहीं देना चाहती। पति-पत्नि एक-दूसरे को स्वतंत्रता नहीं देना चाहते। हम चाहते हैं जैसा हम चाहें, वह वैसा ही करें। गुरु-शिष्य में भी हम एक-दूसरे को पकड़कर रखना चाहते हैं। शिष्य चाहते हैं कि गुरुजी हमारे अनुकूल आचरण करें और गुरु चाहते हैं शिष्य वैसा ही व्यवहार करें जैसा हम चाहते हैं। इसी का नाम लोभ है। जो प्राप्त हो गया उसको हम छोड़ना नहीं चाहते। यह संसार हमें बता रहा है कि आप छोड़ना चाहें या न चाहें, वस्तुएँ तो आपसे प्रतिपल छूट रही हैं। यदि आपको ऐसा भ्रम है कि आपने पकड़कर रखा है तो मृत्यु आकर एक दिन आपके इस भ्रम को तोड़ देती है। हमारे ऋषियों ने तो बहुत पहले ही बता दिया था-

ईशावास्यं इदं सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञ्जिथाः मा गृधः कस्य स्विद् धनम् (ईशोपनिषद्, 1)

अर्थात् सब कुछ यहाँ इस धरती पर, इस अंतरिक्ष लोक में, द्यु-लोक में और तीनों लोकों से भी ऊपर कोई लोक हों तो उन समग्र लोकों में एक सुई के बराबर भी कोई वस्तु हमारी नहीं है और हमारे लिए नहीं है। तो हम अपने शरीर, संबंधों तथा दूसरे शरीरों पर क्या दावा कर सकते हैं। हमें पहले से ही यह मानसिकता बनाकर रखनी है कि यह सब कुछ भगवान् का है और जितनी देर के लिए, जितने दिन के लिए व जिस काम के लिए उसने मुझे भेजा है, मुझे वह करना है। उसने मुझे दूसरों के जीवन से काँटे चुनने भेजा है लेकिन उसके लिए पहले मुझे अपने जीवन के काँटे तो निकालने पड़ेंगे।

खुद ही न चैन जिसने पाया हो जिन्दगी में, वो क्या किसी दिल को सब्रो करार देगा।

पहले किसी ने उस चीज को प्राप्त किया होगा, तभी वह दूसरों को दे पाएगा। यह बात ठीक है कि हम भोग की निन्दा करते हैं लेकिन जो भोग फैलाने वाले व्यक्ति हैं, वो उस भोग के लिए घण्टों अभ्यास करते हैं। इससे यह भी तो निकलकर आता है कि जो योगयुक्त जीवन जीना चाहते हैं और दूसरों को भी योग से जोड़ना चाहते हैं, उनको भी तो योग का अभ्यास करना पड़ेगा।

महर्षि दयानन्द जी 8 से 10 घंटे योग की साधना करते थे, कल्याणकारी प्रवचन का वाचन करते थे। मगर आज केवल महापुरुषों के प्रवचनों से परिवर्तन नहीं आयेगा। परिवर्तन की प्रथम सीढ़ी समाज में चर्चा या प्रवचन, भाषण हो सकती है। दूसरी सीढ़ी है- जो हम बोलें, उसका अपने जीवन में अभ्यास करें, तभी आप परिवर्तन की इच्छा रख सकते हैं। बात चल रही थी काम, क्रोध व लोभ की, हमारी कामनाओं कीं। वे यदि छूटती हैं, तो इसका अर्थ है संतोष। यम-नियमों में, शोच के बाद संतोष दूसरा नियम है। इसलिए कहा गया है कि संतोष से सभी प्रकार की कामनायें छूट जाती हैं। हमें भगवान् का शुक्रिया करना चाहिए और कहना चाहिए कि प्रभु से जो मिला है, उसका बहुत-बहुत आभार। फिर हमें किसी अन्य चीजों के प्राप्त करने की बेचैनी नहीं होती है। हमारे शेष जीवन में यह सब प्राप्त

> यदि हम अपने जीवन में काम और लोभ पर विजय प्राप्त कर लेते हैं या इन दोनों से अपने जीवन को मुक्त कर लेते हैं, तो क्रोध स्वतः ही छूट जाता है।

किया जा सकता है। यह हमारा कर्त्तव्य भी है मगर इस प्राप्ति की कामना में हमें वर्तमान के सुख, चैन को बर्बाद नहीं करना चाहिए। कामना को हमने संतोष से जीता और लोभ को हम जीतते हैं त्याग से। दूसरों की खुशियों के लिए अपनी शक्तियों का विसर्जन कर देना ही त्याग कहलाता है। इससे लोभ छूट जाएगा। यदि हम अपने जीवन में काम और लोभ पर विजय प्राप्त कर लेते हैं या इन दोनों से अपने जीवन को मुक्त कर लेते हैं, तो क्रोध स्वतः ही छूट जाता है। योग दर्शन में बहुत सारे अन्तराय बताए हैं।

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वान-वस्थितत्वानि चित्त विक्षेपास्तेऽन्तरायाः। (योगदर्शन, 1.30)

9 अंतराय बताए हैं- व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रांति, दर्शन, अलब्धभूमि, अनवस्थिति। व्याधि अपने आप में बहुत बड़ा व्यवधान है। बीमारी ठीक करनी है तो योग करो, पूज्य स्वामी जी महाराज भी तो प्रतिदिन योग करने के लिए ही कहते हैं। जैसे-जैसे ये एक-दूसरे से आगे आते जाते हैं, वैसे ही एक-दूसरे से मिटते भी जाते हैं। व्याधि मिटेगी तो स्त्यान मिटेगा, संशय मिटेगा, प्रमाद-आलस्य मिटेगा। अगर हमारा शरीर चुस्त-दुरुस्त है तो उसमें आलस्य-प्रमाद आएगा ही क्यों? और यदि वह बहुत एकाग्र है, शक्ति से सम्पन्न है तो उसमें अनावस्थि तत्व नहीं आएगा। फिर चित्त के विक्षेप भी नहीं आएँगे क्योंकि शरीर का प्रभाव चित्त पर भी पड़ता है। इसी प्रकार से दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व आदि भी इसके साथ जुड़े हुए हैं। जैसे ही व्यक्ति योग से अलग होगा, उसका मन दुःखी होगा। उसे उसके दुःख का कारण भी पता नहीं चलता और कभी-कभी वह दूसरों पर अपने दुःख का आरोप लगाने लगता है कि मैं तो इसके कारण दुःखी हूँ। पर जिस संसार के कारण वह दुःखी है, उसे हम बदल नहीं सकते, तो दुःख मिटेगा नहीं। यदि हम अपने दुःख को ही नहीं मिटा पाएँगे तो फिर हमने मनुष्य जीवन ही क्यों पाया?

अतः हमें यह सोचना पड़ेगा कि यह मेरे ही चित्त का अन्तराय है, इसे मैं ही हटा सकता हूँ। सौमनस्य का उल्टा है दौर्मनस्य। दूसरों के प्रति अच्छे विचार न होना, अपनों के प्रति अच्छे भाव न होना, अपने प्रति हम उच्च चेतना में स्थित न रहें, निम्न चेतना में स्थित

रहें, ये सारे दौर्मनस्य की श्रेणी में आते हैं। भगवान् कृष्ण ने गीता के 16वें अध्याय में मन का तप बताया है। उसमें उन्होंने एक चीज बताई- मनोविग्रहः, जिसका अर्थ मन का विग्रह करना है।

गीता में 16वें अध्याय में भगवान् कृष्ण ने मन का तप करना बताया है। मनुष्य जहाँ अपने मन को लगाना चाहता है, यदि वह तुरन्त वहाँ लग जाए और जहाँ से हटाना चाहता है वह वहाँ से तुरन्त हट जाए- तो यह मन का तप कहलाता है। मन हर मनुष्य के पास होता है मगर मन को चलाना हर मनुष्य के बस की बात नहीं होती। मन पर पूर्ण नियंत्रण रखना सिर्फ योगियों के सामर्थ्य की बात है। योगी जीवन का ह्रास करने वाला पुरुष नकारात्मक पहलुओं से तुरन्त अपने मन को हटाकर जहाँ लगाना होता है, लगा लेता है। और मन को लगाना कहाँ चाहिए? भगवान् में लगाना चाहिए, परमार्थ में लगाना चाहिए, सेवा में लगाना चाहिए, ईश्वर भक्ति में लगाना चाहिए, दीन-दुखियों की सेवा में लगाना चाहिए, अर्जन में लगाना चाहिए, फिर उस अर्जन का विसर्जन करने में लगाना चाहिए। वे अपने चित्त को वहाँ लगा लेते हैं और अपने जीवन को बड़े आनन्द से जीते हैं, इसलिए मन का नियंत्रण आवश्यक है। उदाहरण के तौर पर इसे ऐसे समझा जा सकता है यदि पोता-पोती अपनी दादी या नानी को महंगें से महंगा मोबाईल फोन उपहार स्वरूप देते हैं, तो वह इनके लिए उसी प्रकार है जिस प्रकार कोई खिलौना इनके हाथों में दे दिया गया हो। क्योंकि ऐसे मोबाइल को इन्होंने पहले कभी नहीं चलाया। इसलिए वह आज भी नहीं चला पा रहे हैं, मगर यही मोबाइल यदि किसी व्यापारी के हाथों में या मोबाईल विशेषज्ञों के हाथ में होता है तो वह इस मोबाइल से लाखों-करोड़ों रुपये का व्यापार कर लेता है। सुख के साधन भी जुटा लेता है। यह सब कुछ सम्भव है अभ्यास व प्रयोग से। यह सब कुछ इसी बात पर निर्भर करता है कि हमें किसी चीज का कितना अभ्यास है या उसे हमने, इससे पहले कितनी बार प्रयोग किया है।

अब बात करते हैं वैराग्य की। वैराग्य भी हमें तभी उपस्थित होगाजब हम अपने भीतर सांसारिक वस्तुओं के प्रति अनासक्ति का भाव ला पाएँगे और वह तभी आएगा जब हम अभ्यास करेंगे। हमें अपने यौगिक कर्मों के माध्यम से अभ्यास करने की आवश्यकता है। यदि हमें एक घण्टा अभ्यास करना है तो हमें 23 घण्टे अपने प्रत्येक क्रिया में उस अभ्यास को लाने की आवश्यकता है। महर्षि पतंजलि जी ने भी इसकी यही परिभाषा की है-

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढ़भूमिः। (योगदर्शन, 1.14)

वे कहते हैं कि अभ्यास को दीर्घकाल तक व निरन्तर करते रहना है। केवल एक-एक घंटे में फँसने की आवश्यकता नहीं है, चौबीस घंटे करने की आवश्यकता है। शुरू-शुरू में 5 मिनट से प्रारंभ करके इसकी समय अवधि को लगातार बढ़ाना चाहिए। इसी प्रकार अभ्यास व वैराग्य का हमारे जीवन में स्थान बताया जा सकता है। इस प्रकार हमें अपने जीवन में अभ्यास व वैराग्य का प्रयोग करना चाहिए और फिर व्यवहार काल में भी महर्षि पतंजलि ने बहुत अच्छी बात कही है कि हमारी भावनाओं में भी कितना बल है। महर्षि पतंजलि ने बताया है कि विचार व भावनाएँ हमारे अन्तःकरण है। मनुष्य को इनका उपयोग करना नहीं आता। हृदय तो प्रत्येक मनुष्य रखता है मगर इनका उपयोग किन भावनाओं में करना है, यह सभी को नहीं आता। मन सबके पास है, मन में कैसे विचार उठाने चाहिए, कैसे इनका सदुपयोग करना चाहिए, यह प्रत्येक मनुष्य को नहीं आता। महर्षि पतंजलि हमें बताते हैं-

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्य
विषयाणां भावनातश्चित्त प्रसादनम्।। (योगदर्शन, 1.33)

अर्थात् हम योग या भोग जो भी कर रहे हैं, चित्त की प्रसन्नता के लिए ही तो कर रहे हैं। हमारी प्रत्येक क्रिया, हमारी दौड़-धूप, हम जो भी अपने जीवन में कर रहे हैं, चाहे वह भोग हो या योग, हम सब अपने मन की खुशी के लिए ही तो करते हैं। पर यहाँ प्रसादनम् का अर्थ केवल प्रसन्नता नहीं है, इसका दूसरा अर्थ है निर्मलता। चित्त तभी प्रसन्न होगा जब मन निर्मल होगा। सुख-साधन जुटा लेने से चित्त प्रसन्न नहीं होगा क्योंकि अभी इस चित्त में मलीनता है। यहाँ हमें प्रसन्नता का उपाय बता दिया- मैत्री, करुणा, मुदिता व उपेक्षा। वैसे उपेक्षा कोई भाव नहीं है, अतः मुख्य तीन ही भाव हैं। सुखी व्यक्ति या पुण्य आत्माओं को देखकर हम प्रसन्न हों, उनके साथ हमारी मैत्री का भाव हो और जो दुःखी हैं उनके प्रति हमारी करुणा की भावना हो। करुणा का अर्थ यह नहीं कि हम उनके साथ रोने लगें। करुणा का अर्थ है हम उनको वहाँ से उबारें।

जैसे हम कहीं जा रहे हैं, रास्ते में आगे कोई खड्डा आ गया और हमारा एक साथी उसमें गिर गया। अब जरूरी नहीं है कि उसके प्रति यदि हमारी करुणा है तो हम भी उसी खड्डे में गिरें। हम करुणा का मतलब यही समझ लेते हैं कि एक व्यक्ति रो रहा था और उसके पास बैठे दूसरे व्यक्ति की आँखों में एक भी आँसू नहीं था। पता नहीं कैसे हृदयहीन व्यक्ति हैं जिनमें कोई करुणा ही नहीं है। उसके हृदय में तो उनके साथ रोने की कोई भावना ही नहीं है। आपको उसका रुदन कैसे मिटाया जा सके, यह सोचने की आवश्यकता है। उस व्यक्ति को क्या जरूरत है? उसको हमारी शारीरिक सेवा की जरूरत है, आर्थिक सहायता की जरूरत है, भावनात्मक सहायता की जरूरत है, किसी विचार की जरूरत है। उसको देखकर उसकी स्थिति से उबार लेना ही करुणा का स्वरूप है। यह हमारे बल हैं- मैत्री, करुणा, मुदिता, हर्षित रहना, कुछ न कुछ तो दिया ही है भगवान् ने। सुख दिया तो उसकी कृपा और दुःख दिया तो भी वह कुछ सिखाना, अपलिफ्ट कराना या अपग्रेड कराना चाहते हैं। तो हर हाल में हम ऐसे विश्वास और मुदिता की भावना बनाकर रखने का अभ्यास करें। यह भी महर्षि पतंजलि ने अपने योग दर्शन में

स्वयं ही बता दिया। मैत्री आदि सुबलानि, यह बल हैं। हमारे जैसे किसी व्यक्ति के पास धन बल है, जन बल है, पद-प्रतिष्ठा का बल है, सुयश का बल है, उसके पास कोई राजनैतिक बल है, अनेक-अनेक प्रकार के बल होते हैं। शारीरिक बल है, विद्या का बल है तो इन सबसे बड़े बलों में भी यही बल हैं, मैत्री, करुणा, मुदिता बहुत बड़े बल हैं, यह **बलेषुहस्तीबलादिनी**, (योग दर्शन) हाथी आदि का जो बल है, उन बलों से बड़े बल हैं। हम यह कह सकते हैं कि जो लोग मैत्री करने योग्य नहीं हैं तो हम उनसे कैसे मैत्री करें? यह लोग तो करुणा करने के योग्य हैं ही नहीं, तो उन पर करुणा कैसे करें? इसका उत्तर उन लोगों के लिए नहीं है अपितु हम मैत्री, करुणा इसलिए करें क्योंकि हम अच्छे हैं, हम मैत्री करने के योग्य हैं। वह योग्य है या नहीं, कोई बात नहीं। हम करुणा करने के योग्य हैं, इसलिए हमें करुणा करनी चाहिए। महर्षि पतंजलि ने हमें जीने का यह इतना सुन्दर सलीका सिखाया है। जैसा मैंने शुरू में कहा था कि ऐसा नहीं है कि योग केवल अतीन्द्रिय वस्तु है। अतीन्द्रिय भी है लेकिन योग में कैसे जीना है, हमारा व्यवहार कैसा हो, सुबह से शाम तक का यह शिष्ट तरीका भी हमें योग ही सिखाता है। मैं कहती हूँ कि सारी दुनिया, सारा जमाना योगी न बने तो कोई बात नहीं है, जो योग की महिमा को जानते हैं, योग से प्रेम करते हैं वे योग का प्रचार-प्रसार निरंतर जारी रखें। स्वामी विवेकानंद जी ने इस संसार से विदा होते समय एक ही शब्द कहा था कि मैं अपने जैसे 100 ऐसे संन्यासी चाहता था और यदि वह मुझे मिल जाते तो मैं भारत को नहीं पूरी दुनिया को बदल सकता था लेकिन वह मुझे मिले ही नहीं। अब देखो 135 करोड़ की जनसंख्या में से 135 लोग मिलना, या ये कहें कि 135 भी नहीं केवल 100 व्यक्ति मिलना कितना कठिन कार्य है। ऐसे जुनूनी, जो योग के प्रति सच्ची श्रद्धा व निष्ठा रखने वाले हैं और जिनका यह मिशन है कि वे इस संसार को एक नई दिशा व दशा देना चाहते हैं, उनका मिलना बहुत कठिन कार्य था। श्रद्धेय स्वामी जी महाराज ने अपने जीवन में योग का आलम्बन लेकर अपने जीवन की शुरूआत की और उस योग का ही हम सारा विस्तार देखते हैं। पतंजलि योगपीठ हरिद्वार ने लाखों नहीं करोड़ों लोगों के जीवन में खुशियाँ लाने का जो काम किया है, जो समाधान देने का काम किया है, ऐसे ही सैकड़ों योगी जो हम इनसे जुड़े, ऐसा तो प्रयास कर रही सकते हैं। ऐसे यदि सैकड़ों व्यक्ति भारत में पैदा हो जाएँ तो भारत तो क्या सारे विश्व की भी दिशा और दशा को बदला जा सकता है। बस हमें संकल्प लेने की आवश्यकता है। हमें योग का व्रत लेना है, यज्ञ का व्रत लेना है, सेवा का व्रत लेना है, हमें गो-व्रती बनना है, विद्याव्रती बनना है, हमें व्रतों का जीवन में जितने भी अच्छे व्रत हैं, यम-नियम जो दस व्रत हैं- उनका हमें व्रत लेना चाहिए, संकल्प करना चाहिए। योगी बनना गीता में भी सबसे अच्छा बताया है। गीता के छठे अध्याय में जब अर्जुन ने पूछा कि हम बनें कैसे? क्योंकि मन तो अति चंचल है।

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥ (गीता, 6.34)

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥ (गीता, 6.35)

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन, इसमें संदेह नहीं कि चंचल मन को नियंत्रित करना अत्यंत कठिन है, फिर भी अभ्यास (सतत प्रयत्न) और वैराग्य से (रागात्मक वृत्तियों से विरक्त होकर) उसे नियंत्रण में किया जा सकता है।

वहाँ भी अभ्यास और वैराग्य की ही बात बताई गई है। हम योगदर्शन में बात कर रहे थे और अंत में इस अध्याय के श्लोक में इन्होंने बताया कि आपको योगी बनने का अभ्यास करना है।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन। (गीता, 6.46)

अर्जुन योगी बन जा, योगी सबसे महान् होता है। तो योगी का अर्थ केवल एक-दो घण्टा आँख मूंदकर बैठना नहीं है या किसी खास तरह का भोजन करना या अपने शरीर को किसी प्रकार का सुख देना, यह इसका अर्थ नहीं है। हमारे जीवन के प्रत्येक कर्म में, हमारे प्रत्येक आचरण में, हमारे व्यवहार में, हमारे विचार में, हमारे भाव में एक ऐसी विशिष्टता आए, एक ऐसा आकर्षण पैदा हो जैसा हम योगेश्वर भगवान् कृष्ण के विषय में सुनते हैं। कृष्ण के नाम का अर्थ ही यही है जो सबको आकर्षित करे वह है कृष्ण। यह शब्द 'कृष्' आकर्षक धातु से बनता है जिसकी तरफ सब आकर्षित होते हैं, वही कृष्ण है। और यह आकर्षण हमेशा पैदा होता है योगयुक्त जीवन जीकर। हम ऐसा अभ्यास करें कि जो हमारी आगे आने वाली पीढ़ी है, जो जमाना है, उसका आकर्षण भोग की तरफ न हो, योग की ओर हो। हम तो श्रद्धेय स्वामी जी महाराज को बहुत नजदीक से देखते हैं, पिछले 30 वर्षों से श्रद्धेय स्वामी जी महाराज का जीवन देख रहे हैं। वह जो बोलते हैं, वैसे ही मैंने उनको जीते हुए देखा है और इनके इसी योग युक्त जीवन के कारण आज कम से कम 500 साधु-संन्यासी भाई-बहन यहाँ आकर इस आकर्षण से युक्त होकर अपना जीवन उसी क्षेत्र में उनकी आज्ञा अनुसार लगाने के लिए तैयार हैं और कितने ही लोगों को आज आकर्षण हो गया है कि केवल भारत के ही नहीं पूरे विश्व के 200 देशों के ऐसे देश जिनको हम मुस्लिम कंट्री कहते हैं, उनका भी योग के प्रति आकर्षण होना, यह अभ्यास और वैराग्य का ही परिणाम है। इस प्रकार का जीवन जीने के लिए हम सभी संकल्प लें।

इसी प्रकार योग का प्रचार-प्रसार व विस्तार करते रहें। पहले अपने जीवन में और उसके बाद जन-जन के जीवन में। इन्हीं भावनाओं के साथ आप सभी को हृदय से बहुत-बहुत प्रणाम। «